विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
शैव मठ का तीर्थ प्राचीन मालवा
डॉ. किरण शर्मा

पृष्ठ क्र. 4-5
संसार के दिग्गज खगोलविद् आर्य भट्ट
प्रमोद भार्गव

पृष्ठ क्र. 6-7
राजा भोज मर गया, गुम गया कालिदास
डॉ. पूरन सहगल

पृष्ठ क्र. 8
पुस्तक चर्चा
संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य

शैव मठ का तीर्थ प्राचीन मालवा

डॉ. किरण शर्मा

धर्म के व्यवस्थापकों तथा आचार्यों के निवास के लिऐ मठों का निर्माण किये जाने की परम्परा प्राचीन है। इस प्रकार के मठ जन-कोलाहल से दूर निर्जन तथा एकान्त स्थानों पर बनाये जाते थे। सम्भवत: मठों की कल्पना बौद्ध धर्म की देन है। बौद्ध भिक्षुओं के भिक्षाटन को रोकने के लिऐ बौद्ध मठों व विहारों का निर्माण किया गया और इन संस्थाओं को दान देने की परम्परा प्रारम्भ की गयी। यह परम्परा ही कालान्तर में मठ के रूप में विकसित हुई प्रतीत होती है। समय के साथ-साथ बौद्ध मत में महासुख की कल्पना का प्रवेश हुआ। यह कल्पना शक्ति मत से बहुत अधिक साम्य रखती है। कालान्तर में शाक्त तथा बौद्ध मतों में भेद समाप्त होता गया तथा शिव-शक्ति के मिलन की कल्पना व्यापकता पा गयी। भिक्षुगण आध्यात्मिक तथा शैक्षिण विषयों को छोड़कर तंत्र तथा महासुख की कल्पना में लीन हो गये।

प्रमुख भिक्षुगण दान दी गई सम्पत्ति को अपने अधिकार में लेने का हरसम्भव प्रयास करने लगे। कालान्तर में व्यक्तिगत पद का लाभ उठाकर ये भिक्षुगण समस्त सम्पत्ति को अपने आधिपत्य में कर उस संस्था (मठ) के स्वामी बन बैठे। प्रधान अधिकारी मठाधीश के रूप में कार्य करने लगे। बौद्ध, शैव तथा शाक्त मत इस प्रकार मिश्रित धर्म बन गये थे और उनमें स्थूल विभेद करना ही कठिन हो गया था। शैव साधु तथा मंत्रयानी भिक्षुओं में कोई अन्तर नहीं रहा। बौद्ध परम्परा में शनै:शनै: प्रवेश हुई बुराईयाँ कुछ समय पश्चात् जीवित रही। ऐसा लगता है कि उसका अस्तित्व शैवमत में विलीन हो गया। वर्तमान समय में मठाधीश शैव मतानुयायी माने जाते हैं।

मालवा में शैव मठ परम्परा की प्राचीनता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी प्राप्त सन्दर्भो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मालवा में शैव मठों की परम्परा, प्राचीन समय से ही विद्यमान रही हैं।

पंचतंत्र में उल्लेखित एक कथा के अनुसार उज्जयिनी के बाहर एक मठ था। वर्तमान में हमें इस मठ से संबंधित कोई पुरावशेष प्राप्त नहीं होते हैं, लेकिन पंचतंत्र की प्रामाणिकता को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कथा-सरित्सागर में उल्लेखित एक कथा के अनुसार,आदित्य सेन नामक राजा जब एक विद्रोही सामन्त पर आक्रमण करने उज्जयिनी के मार्ग से निकला, तब उज्जयिनी के बाहर एक ब्राह्मण के गुप्त मठ में ही उसने रात को विश्राम किया था। इस गाथा में ऐतिहासिकता के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि आज उज्जैन में प्राचीन मठों के अस्तित्व के कोई भी पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। फिर भी हम यह सुविधापूर्वक कह सकते हैं कि मालवा में गुप्त औलिकर काल में निश्चित ही शैव मठ निर्मित होने लगे थे।

अभिलेखों में भी शैव मठों का उल्लेख मिलता है। इन मठों में शैव योगी तथा आचार्य निवास करते थे। आज भी यह परम्परा विद्यमान है। इन मठों के लिऐ राजाओं से दान प्राप्त हुआ करते थे। संन्यासियों की सुविधा हेतु मठों के निकट तालाब तथा उद्यान भी निर्मित किये जाते थे। कलचुरि शासक

रत्नदेव तृतीय के मंत्री ने 1181 ई. में एक शैव मठ का निर्माण करवाया था। सोमेश्वर ने उदयपुर अभिलेख में कापालिकों के निवास के लिये शैव मठ के निर्माण का उल्लेख आया है। इन शैव मठों में रह कर शैव योगी साधना किया करते थे। मान्धाता का अमरेश्वर मंदिर, प्रस्तर-खण्ड अभिलेख सोमेश्वरदेव मठ का उल्लेख करता है।

7वीं शताब्दी में जब जगद्गुरु शंकराचार्य अपने दिग्विजय अभियान पर निकले थे तो उज्जैन भी आये थे। उस समय उज्जैन में शैव मठ अस्तित्व में थे। एक शैवाचार्य उन्मत भैरवानन्द उनसे विवाद करने के लिये भी उपस्थित हुआ था। शंकराचार्य ने अन्य सम्प्रदायों के साथ-साथ उज्जैन के कापालिकों और पाशुपतों से भी शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी।

उज्जैन में दत्त अखाड़ा नामक एक मठ अभी भी विद्यमान है। यह भैरव या जूना अखाड़ा कहलाता है। यद्यपि मराठाकाल में इस अखाड़े का पूरी तरह पुन: निर्माण कर दिया गया है फिर भी यहाँ ऐसी अनुश्रुति है कि इस अखाड़े की स्थापना शंकराचार्य द्वारा की गई थी। इस अखाड़े के प्रागंण में एक छोटे से देवालय में स्फटिक प्रस्तर के दो अति लघु शिवलिंग अभी भी विद्यमान है। इन शिवलिंगों के विषय में यह मान्यता है कि ये शंकराचार्य द्वारा स्थापित किये गये थे। इस देवालय के सामने पूर्व में शिप्रा नदी प्रवाहित है। इस नदी पर इस ओर जो घाट है, वह भी हरि-हर घाट कहलाता है।

आचार्य शंकर द्वारा स्थापित किये जाने संबंधी इस मठ की अनुश्रुति को एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि आचार्य शंकर द्वारा अन्यत्र मठ स्थापित किये गये थे। दक्षिण में श्रृंगेरी मठ, पूर्व में गोवर्धन मठ, उत्तर में जोशी मठ तथा पश्चिम में शारदा मठ। इन मठों के अतिरिक्त काँची काम-कोटि मठ भी स्वयं को शंकराचार्य द्वारा स्थापित किये जाने का दावा प्रस्तुत करता है।

विदिशा के ग्यारसुर में दक्षिण-पश्चिम में स्थित मंदिर वाजिया मठ(वज्र मठ) के नाम से जाना जाता हैं। इस मंदिर में शिव, विष्णु तथा सूर्य की प्रतिमाएँ स्थापित थी। वर्तमान समय में यहाँ जैन प्रतिमाएँ स्थापित हैं। ऐसा मानना अन्यथा नहीं है कि प्राचीन समय में यह शैव मठ रहा होगा।

गुना क्षेत्र के कदवाहा ग्राम के 1 मील उत्तर-पश्चिम में एक 10वीं-11वीं सदी का शिव मंदिर स्थानीय जनता में चाण्डाल मठ के नाम से जाना जाता है। कदवाहा में ही गढ़ी क्षेत्र के निकट लगभग 10वीं शताब्दी ई. का एक दो मंजिला शैव मठ बना हुआ है। यह मठ मतमयूर सम्प्रदाय के शैवाचार्यों के लिए बनवाया गया था। इस स्थल से प्राप्त अभिलेख में शैवाचार्यो की वंशावली दी गयी है।

गुना क्षेत्र के ही रणोद नाम स्थान पर लगभग 10-11वीं शताब्दी का एक शैव मठ निर्मित है। यह मठ स्थानीय जनता में खोखई नाम से जाना जाता है। प्रस्तरों द्वारा निर्मित इस दो-मंजिलें शैव मठ से प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि इस मठ का निर्माण मत्तमयूर सम्प्रदाय के व्योमकेश शैवाचार्य द्वारा किया गया था।

परमार कालीन मालवा में अनेक शैव सम्प्रदाय विकसित हो गये थे। इन शैव सम्प्रदायों के शैवाचार्यो के लिये शैव मठों का निर्माण होना स्वाभाविक ही था। उज्जयिनी का चण्डिकाश्रम मठ इस परम्परा का एक ज्वलंत प्रमाण है। इस मठ में शैव मत के ग्रंथों को सुरक्षित रखा जाता था तथा उन पर सत्संग किया जाता था। इस मठ के प्रमुख मठाधीशों के नाम तापस, वाकलवासी, ज्येष्ठजराशि, योगेश्वरराशि, मौनिराशि, योगेश्वरीराशि, दुर्वासराशि केदारराशि आदि थे। योगेश्वरी नाम से यह प्रतीत होता है कि सम्भवत: स्त्रियाँ भी मठाधीश बन सकती थीं। भाव-बृहस्पति नामक एक शैवाचार्य ने भी एक पीठाचार्य की ख्याति अर्जित की थी।

शिप्रा पर शैव तीर्थ

तीर्थों का धार्मिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म से अनुप्राणित इस भारत-भूमि का हृदय-स्थल मालवा तीर्थों का नगर कहलाता है। मालवा का अंचल दो-दो ज्योतिर्लिंगों से सुशोभित है। एक ज्योतिर्लिंग शिप्रा के किनारे महाकाल के नाम से प्रसिद्ध है, तो दूसरा ज्योतिर्लिंग नर्मदा के किनारे औंकारेश्वर के नाम से जाना जाता हैं। महाकाल की नगरी अवन्तिका का तथा ओंकारेश्वर का प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। दोनों ही तीर्थस्थल अनेक शैवतीर्थों को अपनी गोद में समेटे हुए हैं।

वर्तमान समय में इन शैव तीर्थों के साहित्यिक सन्दर्भ अधिक तथा पुरातात्विक प्रमाण अल्प मात्रा में प्राप्त होते हैं।

स्कन्द पुराण का अवन्ति-खण्ड निम्नलिखित शैव तीर्थों का वर्णन करता है:-

(1) महाकाल या कोटितीर्थ (अध्याय-7), (2) कलिमलनाशक तीर्थ (अध्याय 9), (3) अप्सरा कुण्ड तीर्थ (अध्याय 10), (4) कुटुम्बेश्वर तीर्थ (अध्याय 11), (5) गन्धर्व तीर्थ (अध्याय 12), (6) मर्कटेश्वर तीर्थ (अध्याय 13), (7) महिषकुण्ड तीर्थ (अध्याय 13), (8) स्वर्ग द्वार तीर्थ

(अध्याय 14), (9) दशाश्वमेध तीर्थ (अध्याय 18), (10) पिशाचमोचन तीर्थ (अध्याय 22), (11) हनुमत्केश्वर तीर्थ (अध्याय 23), (12) यमेश्वर तीर्थ (अध्याय 25), (13) वाल्मीकेश्वर तीर्थ (अध्याय 27-28), (14) शुक्रकेश्वर तीर्थ (अध्याय 27-28), (15) गंगेश्वर तीर्थ (अध्याय 27-28), (16) कामेश्वर तीर्थ (अध्याय 27-28), (17) चण्डेश्वर तीर्थ (अध्याय 27-28), (18) अंकपातन तीर्थ (अध्याय 33), (19) चन्द्रादित्य तीर्थ (अध्याय 34), (20) करभेश्वर तीर्थ (अध्याय 35), (21) कुसुमेश्वर (अध्याय 37), (22) सोमेश्वर तीर्थ (अध्याय 38), (23) नरकेश्वर तीर्थ (अध्याय 39), (24) केदारेश्वर तीर्थ (अध्याय 41), (25) सौभाग्येश्वर तीर्थ (अध्याय 42), (26) गोपेन्द्र तीर्थ (अध्याय 42), (27) भक्तिभेद तीर्थ (अध्याय 45), (28) अभयेश्वर तीर्थ (अध्याय 48), (29) कलकलेश्वर तीर्थ (अध्याय 48), (30) अंगारेश्वर तीर्थ (अध्याय 48), (31) अगस्त्येश्वर तीर्थ (अध्याय 49), (32) अमरावती तीर्थ (अध्याय 56), (33) गया तीर्थ (अध्याय 58), (34) गोमती कुण्ड तीर्थ (अध्याय 73), (35) वामन तीर्थ (अध्याय 74), (36) वामनकुण्ड या ब्रह्मतीर्थ (अध्याय 74), (37) वीरेश्वर तीर्थ (अध्याय 77), (38) नाग तीर्थ (अध्याय 75), (39) भैरव तीर्थ (अध्याय 75), (40) कुटुम्बेश्वर तीर्थ (अध्याय 77), (41) नृसिंह तीर्थ (अध्याय 77), (42) खण्डेश्वर तीर्थ (अध्याय 78), (43) कर्कराज तीर्थ (अध्याय 81), (44) देव तीर्थ (अध्याय 82), (45) घृतकुल्या तीर्थ (अध्याय 83), (46) मधुकुल्या तीर्थ (अध्याय 83), (47) अवन्ति तीर्थ (अध्याय 83), (48) ऋणमुक्तेश्वर तीर्थ (अध्याय 83), (49) गंगा तीर्थ (अध्याय 83), (50) अक्रूरेश्वर तीर्थ (अध्याय 31), (51) शंकराचार्य तीर्थ (अध्याय 33), (52) चन्द्रादित्य तीर्थ (अध्याय 34), एवं (53) योग तीर्थ (अध्याय 83)।

उपरोक्त तीर्थों के अतिरिक्त अवन्ति खण्ड जिन अन्य तीर्थों का भी उल्लेख करता है, ये निम्नलिखित हैं - (1) जयशंकर तीर्थ, (2) उत्तरमानस तीर्थ, (3) सनातन तीर्थ (4) कायावरोहण तीर्थ (5) सहस्त्रकोटि (6) विजय तीर्थ, (7) लुम्पेश्वर तीर्थ, (8) मल्लिकार्जुन तीर्थ आदि।

यूट्यूब चैनल 'भारत विक्रम' देखने के लिए लॉगइन करें

https://youtube.com/channel/UCpeZ-d1AJUKlJtSKpiHuUJw

संसार के दिग्गज खगोलविद् आर्य भट्ट

प्रमोद भार्गव

भारतीय वैज्ञानिक आर्य भट्ट ने आज से करीब 1500 वर्ष पूर्व ही यह ज्ञात कर लिया था कि पृथ्वी घूमती है, जबकि पौलेंड के वैज्ञानिक निकोलस कोपरनिकस और इटली के खगोल शास्त्री गैलीलियो ने यही सिद्धांत 500 वर्ष पहले यानी 16वीं सदी में प्रतिपादित किया। किंतु विडंबना देखिए भारत समेत पूरी दुनिया में इन्हीं के ही सिद्धांत मान्य हैं, जबकि खगोलीय खोज का श्रेय आर्य भट्ट को मिलना चाहिए। यहां प्रश्न खड़ा होता है कि आर्य भट्ट ने आखिर किस तकनीक और किन उपकरणों उपकरणों से पृथ्वी के घूमने की अवधारणा स्थापित की ? जो आज भी विज्ञान सम्मत हैं।

आर्य भट्ट बिहार के पाटलिपुत्र (पटना) के निकट कुसुमपुर ग्राम में 13 अप्रैल 476 को जन्मे थे। मात्र 23 वर्ष की उम्र में उन्होंने 'आर्यभीय' ग्रंथ लिखा, जिसमें नक्षत्र-विज्ञान और गणित से संबंधित 121 श्लोक हैं। आर्य भट्ट ने गणित, काल-क्रिया और वृत्त तीन सिद्धांत दिए। आर्यभट्ट ऐसे विश्व के अनूठे खगोलविद् हैं, जिन्होंने पहली बार सुनिश्चित किया कि ग्रहों का एक दिवसीय भ्रमण पृथ्वी के घूमने का कारण है। आर्य भट्ट ने सूर्य का चक्कर लगाने वाले वृत्तों (गोलों) का भी वर्णन किया है। आर्य भट्ट ने ही तय किया कि पृथ्वी सभी दिशाओं में वृत्ताकार तथा अण्डाकार है। पृथ्वी अपनी धुरी पर धूर्णन करती है और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। आर्य भट्ट ने पृथ्वी की परिधि की भी गणना कर बताया था कि इसका व्यास 39,968,0582 किमी है, जो वर्तमान में आधुनिकतम उपकरणों से नापे गए व्यास 40,075,0167 से मात्र एक प्रतिशत कम है। उन्होंने इसे उस कालखण्ड में प्रचलित 'योजन' पैमाने से नापा था। एक योजन पांच मील के बराबर होता है। योजन के अनुसार पृथ्वी की कुल परिधि 24,835 मील थी, जो वर्तमान नापों के मुताबिक 24,902 मील के समीप है।

आर्य भट्ट यही नहीं रुके उन्होंने नक्षत्र दिवस की अवधि का आकाश में स्थिर नक्षत्रों के संदर्भ में परिगणना कर बताया कि एक युग में 1,57,791,7500 दिन होते हैं। इन्हें यदि इस अवधि में पृथ्वी द्वारा दी गई परिक्रमाओं 1,58,223,7500 से विभाजित करें तो पृथ्वी 365 दिन, 6 घंटे, 12 मिनट तथा 30 सेकेंड में सूर्य का एक चक्कर लगाती है। एक दिन की यह अवधि 23 घंटे 56 मिनट, 4 सेकेंड बैठती है। यह अवधि आश्चर्यजनक रूप में 23 घंटे 56 मिनट 4.091 सेकेंड के वर्तमान अनुमान के एकदम निकट है। आर्य भट्ट ने अपने सरल श्लोकों के माध्यम से कहा कि पृथ्वी ग्रह द्वारा तय की दूरी सूर्य द्वारा युग दीप्त महावृत्त की परिधि के बराबर

होती है। इसे आर्य भट्ट ने 43,20,000 वर्षों के महायुग को युग कहा है। आर्य भट्ट ने यह भी सुनिश्चित किया कि मेरूपर्वत हिमवंत के शीत प्रदेश में है और एक योजन से ज्यादा ऊंचा नहीं है। इसीलिए आर्य भट्ट की 'भारतीय गणित के सूर्य' के रूप में तुलना की गई है। इसीलिए प्रसिद्ध वैज्ञानिक और भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने आर्य भट्ट को 'पथ-प्रदर्शक गणितज्ञ' मानते हुए लिखा है, 'मैं जब स्कूली शिक्षा के दौरान विज्ञान का छात्र था, तब हमें 'ऋषि वैज्ञानिक' नाम का एक पाठ पढ़ाया जा रहा था। उसे पढ़कर मैं गहन सोच में डूब गया। जब पॉलिश वैज्ञानिक कॉपरनिकस (15वीं सदी) तथा इतालवी वैज्ञानिक गैलीलियो (16वीं सदी) ने सौर-मंडल की गतिशीलता की स्थापना करते हुए कहा कि पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करती है, तो उनकी उस अनमोल खोज के लिए उन्हें दंडित किया गया। मजबूरन कॉपरनिकस को अपने बयान से पीछे हटना पड़ा। वहीं गैलीलियो को ताउम्र कारावास भोगना पड़ा। ये स्थितियां वैज्ञानिकों को हतोत्साहित करने वाली थीं।'

आर्य भट्ट भू-भ्रमण के अपने सिद्धांत को सरलता से समझाते हुए कहते हैं कि 'धरा अपने कक्ष पर पश्चिम से पूरब की ओर घूमती है। इसीलिए हमें आकाश के नक्षत्र पूरब से पश्चिम की ओर जाते दिखाई देते हैं।' इसे उदाहरण देते हुए समझाया कि जिस तरह कोई व्यक्ति तेज गति से चल रही नाव पर सवार रहते हुए नदी किनारे के वृक्षों को पीछे जाते हुए देखने का अनुभव करता है, उसी तरह अपनी धुरी पर परिक्रमा करती पृथ्वी के फलस्वरूप सूर्य तथा नक्षत्रों को गतिशील रहते हुए देखने का भ्रामक अनुभव होता है। आर्य भट्ट ने ही प्रथम बार स्थापित किया कि पृथ्वी के परिक्रमा तल तथ चंद्र के परिक्रमा तल एक कोण बनाते हैं और वे केवल दो बिंदुओं पर मिलते हैं जिन्हें राहू तथा केतु कहते हैं। अर्थात राहू और केतु दो ग्रह नहीं हैं और न ही राक्षस हैं। चंद्र जब राहू पर पहुंचता है, तब सूर्य, पृथ्वी और चंद्र एक रेखा में आ जाते हैं। जब ऐसा होता है, तब पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ती है, जिसे हम चंद्र-ग्रहण कहते हैं और चंद्रमा जब केतु बिंदु पर होता है, तब सूर्य, पृथ्वी तथा चंद्रमा एक पंक्ति में आ जाते हैं। ऐसा होता है, तब चंद्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है, जिसे हम सूर्य ग्रहण कहते हैं। आर्य भट्ट ने इस मान्यता को भी सिद्ध किया कि पृथ्वी चार महाभूतों मिट्टी, जल, अग्नि और हवा से निर्मित है। वे आकाश को मूल तत्व नहीं स्वीकरते हैं। उनकी ये मान्यताएं नितांत नवीनतम थीं, जो दुनिया में पहली बार उनके ग्रंथ आर्य भीय के माध्यम से सामने आई।

इस ग्रंथ की टीका भास्कर प्रथम ने 'भास्कर का आर्य भीय भाष्य' नाम से लिखी। यह सर्वश्रेष्ठ टीका मानी जाती है। यह भी ज्ञान में आया है कि 800 ईसवीं के आस-पास आर्य भीय का 'जीज अल अर्जभहर' नाम से अरबी में अनुवाद भी हुआ और अनेक ज्योतिष के ग्रंथ भी लिखे गए। मध्य-एशिया के प्रकाण्ड पंडित माने जाने वाले अलबरूनी (973-1048) ने अपने ग्रंथ 'अल-हिंद में आर्य भट्ट के सिद्धांतों की जानकारी देने के साथ उनकी अर्चना भी की है। हालांकि उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि उन्हें आर्य भट्ट की कोई मूल पुस्तक देखने में नहीं आई। आर्य भट्ट के खगोलीय सिद्धांतों के बारे में जो भी जानकारी मिली, वह उनके समकालीन रहे खगोलविद् ब्रह्मगुप्त (598 ई.) के 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' ग्रंथ के अध्याय 'तंत्रपरीक्षा' में मिली है। इसमें ब्रह्मगुप्त ने आर्य भट्ट की मान्यताओं का खंडन करते हुए, उन्हें दोषपूर्ण सिद्ध करने की कोशिश की है। परंतु इसी कोशिश में उन्होंने आर्य भट्ट के ग्रंथ और उसमें लिखे श्लोकों का उल्लेख किया है। वराहमिहिर ने भी इसी दृष्टि से आर्य भट्ट की आलोचना की है। किंतु इसी आलोचना में श्लोक उल्लेखित हैं, जो पृथ्वी के परिक्रमा संबंधी सिद्धांत की तार्किक व्याख्या करते हैं। वराहमिहिर भी आर्य भट्ट के समकालीन थे।

संस्कृत के अंग्रेज विद्वान हेनरी टॉमस कोलब्रुक (1765-1837 ई.) जब ईस्ट इंडिया कंपनी के बड़े अधिकारी के रूप में भारत आए, तब उन्हें अलबरूनी की टीका से आर्य भट्ट के बारे में जानकारी मिली और उनके बारे में गहराई से जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। कोलब्रूक करीब 20 साल नागपुर, मिर्जापुर, पूर्णिया एवं त्रिहुत में रहे। वे नौकरी के दोरान आर्य भीय ग्रंथ को खोजने में लगे रहे किंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। आर्यभीय की ताड़-पत्रों पर हस्तलिखित केरल में तीन पांडुलिपियां डॉ. भाऊदाजी लाड (1824-1874 ई.) को 1863 मिली थी। ये मलयालम में टीका सहित लिखी गई थी। इनका अध्ययन व अनुवाद करके डॉ. लाड ने आर्य भट्ट और उनके ग्रंथ आर्यभीय पर एक शोधपूर्ण आलेख लिखा, जो 1865 में 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' लंदन के जर्नल में प्रकाशित हुआ था। आर्य भट्ट और उनके खगोलीय सिद्धांतों के बारे में यह सर्वाधिक प्रमाणित जानकारी थी। इसी से ज्ञात हुआ कि आर्यभीय के दो खंड हैं। पहला 'दशगीतिका' एवं 'आर्याष्टशत'। आर्याष्टशत में 108 श्लोक हैं और दशगीतिका में मंगलाचरण समेत 13 श्लोक हैं। ये लोक ब्रह्मगुप्त के ग्रंथ ब्रह्मस्फुट सिद्धांत से बतौर उदाहरण पांडुलिपियों में थे। इस समानता से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पांडुलिपियों के श्लोक आर्य भीय ग्रंथ के ही हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद 1976 में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नईदिल्ली ने आर्य भट्ट की 1500वीं जयंती मनाई और इस उपलक्ष्य में आर्य भीय ग्रंथ के तीन प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किए। इन्हीं में एक भास्कर प्रथम का 'आर्य भीय भाष्य'(629 ई)

भी है। 19 अप्रैल 1975 को भारत ने जब अपना प्रथम उपग्रह अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किया, तो उसे 'आर्य भट्ट' नाम दिया गया। आर्य भट्ट ने अपने सिद्धांतों के बारे में लिखा है, 'यथार्थ और मिथ्या ज्ञान के समुद्र से मैं यथार्थ ज्ञान के डूबे हुए रत्न को देवता के प्रसाद से अपनी बुद्धिरूपी नाप की मदद से बाहर निकालकर लाया हूं।'

अब प्रश्न उठता है कि आर्य भट्ट ने पृथ्वी के घूर्णन रहस्य को कैसे जाना? जबकि उस कालखंड में दूरबीन का आविष्कार नहीं हुआ था। दरअसल आर्य भट्ट के समकालीन वराहमिहिर और उनके बाद के गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त और भास्कर प्रथम ने उनके ग्रंथों की व्याख्या करते हुए माना कि आर्य भट्ट ने अपने सिद्धांत प्राचीन 'सूर्य सिद्धांत' ग्रंथ के आधार पर प्रतिपादित किए थे। आर्य भट्ट ने इस आधार पर सूर्योदय की अपेक्षा मध्यरात्रि दिवस गणना का उपयोग किया। इस ग्रंथ में खगोलीय उपकरणों का वर्णन है, जिनके नाम हैं, शंकु-यंत्र, छाया-यंत्र, कोणमापी उपकरण, धनुर-तंत्र, चक्र-यंत्र, यस्ती-यंत्र (बेलनाकार छड़ी) छत्र-यंत्र और जल घड़ियां। यानी आर्य भट्ट कोई पानी में लकीर नहीं खींच रहे थे, बल्कि परंपरागत उपकरणों से पृथ्वी के घूमने के सिद्धांत को रेखांकित कर रहे थे।

इन उपकरणों से आर्य भट्ट ने गणित, गोले, काल-क्रिया का विस्तार के साथ तथ्यात्मक शोध किया है। आर्य भट्ट विश्व के दिग्गज गणितज्ञ हैं, जिन्होंने एक वृत्त के व्यास की अनुमानित मान्यता निर्धारित की और मूल्य का विवरण दिया। गोले या वृत्त की स्थापना के सिलसिले में 'दशगीतिका' के वृत्त नामक अध्याय में आर्य भट्ट ने समूची पृथ्वी एवं आकाश में दिखाई देने वाले उन गोलों का वर्णन किया है, कि वे एक दिन में सूर्य के कितने चक्कर लगाते हैं। इन्हीं उपकरणों से आर्य भट्ट ने सिद्ध किया कि ग्रहों का एक दिवासीय भम्रण पृथ्वी की सूर्य परिक्रमा के कारण हैं। सूर्य स्थिर है और पृथ्वी गतिशील या चक्रवत है। इस भू-भ्रमण सिद्धांत के अलावा आर्य भट्ट ने बीज गणित, गोलार्द्धीय ज्यामिति अथवा क्षेत्र ज्यामिति में उल्लेखनीय काम किया है। आर्य भट्ट दुनिया के पहले ऐसे गणितज्ञ हैं, जिन्होंने शून्य एवं दशमलव द्वारा अंकों के मूल्यों को सार्थकता प्रदान की। हालांकि शून्य का आविश्कार वैदिककाल में ही हो गया था। 'ईशावास्योपनिशद्' के एक मंत्र में शून्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि-

''ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिंद पूर्णात पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिश्यते।'

अर्थात, यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है। पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है। फिर भी वह पूर्ण ही रहता है। अंत में पूर्ण में पूर्ण लीन हो जाता है। फिर भी पूर्ण बचा रहता है। इस अद्भुत परिकल्पना में गणित की सबसे महत्वपूर्ण संख्या 'शून्य' और 'ब्रह्मा' दोनों सूक्ष्म और विस्तृत रूपों में परिभाषित कर दिए गए हैं। ऋषियों ने ब्रह्म और ब्रह्माण्ड को पूर्ण अर्थात अनंत और शून्य दोनों माना है।

विश्व-विख्यात ग्रंथ 'रामचरित मानस' लिखने वाले तुलसीदास संत कवि थे। तत्पश्चात् भी उन्हें खगोल विज्ञान की जानकारी थी। 'हनुमान चालीसा' में उन्होंने पृथ्वी और सूर्य की दूरी को निम्न पद में दर्शाया है-

'जुग सहस्त्र योजन पर भानु, लील्यो ताहि मधुर फल जानू।'

अर्थात, पृथ्वी से सूर्य की दूरी 153,600,000 किलोमीटर है, जो आधुनिक यंत्रों से नापी गई दूरी के लगभग बराबर है।

आर्य भट्ट ने ही पहली बार यह प्रतिपादित किया कि पृथ्वी, चंद्रमा तथा अन्य ग्रहों के पास स्वयं का प्रकाश नहीं है, ये सूर्य के प्रकाश से ही अवलोकित होते हैं। पृथ्वी गोलाकार है, इसलिए विभिन्न नगरों में रेखांतर के कारण अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग समय सूर्योदय एवं सूर्यास्त होता है।

उनके इन कार्यों को समूचे आर्यावर्त में प्रसिद्धि मिलने के बाद खगोल और गणित में जिज्ञासा रखने वाले दक्षिण भारत के केरल एवं तमिलनाडू से अनेक छात्र उनसे शिक्षा प्राप्त करने कुसुमपुर आए। ये छात्र आर्य भट्ट की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए अपने साथ संस्कृत में लिखित ग्रंथ आर्य भीय को साथ ले गए और उसका ताड़-पत्रों पर मलयालम में अनुवाद किया। आज भी केरल निवासियों के बीच आर्य भट्ट की ज्ञान परंपराएं प्रचलन में हैं। यहीं से आर्य भीय की मलयालम में लिखित तीन पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं। इन्हीं पांडुलिपियों और ज्ञान परंपराओं के आधार पर यह धारणा बन गई कि आर्य भट्ट का जन्म केरल में हुआ था।

तथापि देश की विज्ञान परंपरा का यह दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि हम आजादी के 75 साल बाद भी आर्य भट्ट के बनिस्वत कोपरनिकस के भू-भ्रमण सिद्धांत को आधिकारिक सिद्धांत मानते हैं। जबकि कोपरनिकस अपना सिद्धांत आर्यभट्ट की दिसंबर 550 हुई मृत्यु के करीब एक हजार साल बाद अस्तित्व में लाए थे। दरअसल कोपरनिकस के कार्यकाल तक अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के अंग्रेजी और अरबी, फारसी में अनुवाद हो चुके थे। संभव है कोपरनिकस ने इन्हीं अनुवादित पुस्तकों से पृथ्वी का घूर्णन सिद्धांत प्रतिपादित किया हो? अलबत्ता हमारे अधिकांश वैज्ञानिकों के साथ दिक्कत यह है कि वे संस्कृत न तो जानते हैं और न ही जानना चाहते हैं। मात्र पाश्चात्य वैज्ञानिकों की सैद्धांतिक अवधारणाओं का अनुकरण कर रहे हैं। हालांकि अब आर्य भट्ट की स्वीकार्यता भारत में ही नहीं समूची दुनिया में बढ़ रही है। अब देश की विज्ञान संस्थाओं में आर्य भट्ट की मूर्तियां भी लगाई जाने लगी हैं।

राजा भोज मर गया, गुम गया कालिदास

डॉ. पूरन सहगल

एक किंवदंती हाड़ोती में कही सुनी जाती है। बड़ी विचित्र भी है। इसे मैंने ठा. दलेलसिंह यादव (संधारा) की नातिन संतोष हाड़ा (अब संतोष राजावत) से सुनी थी। उसका अर्थ खोजना कठिन था। किंदवंती, 'राजा भोज मर गया, गुम गया कालिदास' राजा भोज और कालिदास का समय भी मिलान नहीं हो रहा था। राजा भोज क्यों मरा और कालिदास क्यों खो गया? बहुत समय तक यह पहेली जैसी किंवदंती मेरे मन-मस्तिक में घुम्मर घेर होती रही। कार्यकारण संबंध भी स्थापित नहीं हो पा रहा था। उस अंचल में इस किंवदंती का प्रयोग इस आशय में होता है, मानो किसी एक अघट के कारण दूसरा अघट हो गया हो। जैसे पुत्र के मरने या गुम जाने पर पिता सदमा खाकर विक्षिप्त हो जाए या मर जाये।

ठाकुर दलेलसिंह ने इस के कार्य-कारण को स्पष्ट करते हुए इसमें निहित अन्तर्कथा को स्पष्ट किया।

'राजा भोज की राजसभा में एक महाकवि था। नाम था पद्मगुप्त। वह राजा भोज का मित्र भी था। दोनों में खूब काव्य चर्चा होती थी। राजा भोज ने उसे कालिदास की पदवी से सम्मानित किया था, इसलिए उसे इसी नाम से ही जाना जाता था। किसी बात को लेकर दोनों मे मनमुटाव हो गया। कालिदास (पद्मगुप्त) रुठकर चला गया। कई दिनों तक दरबार में नहीं आया। भोज को चिंता हुई। खूब तलाश करने पर भी उन्हें कालिदास का पता नहीं चल पाया। अपने मित्र के विछोह में भोज व्याकुल हो उठे। उनके मन में कई प्रकार के बुरे-बुरे विचार आने लगे। कहीं वह राज्य छोड़कर तो नहीं चला गया अथवा उसने आत्मघात् तो नहीं कर लिया? वह बहुत भावुक है। कुछ भी कर सकता है। यदि उसके साथ कोई अघट हो गया होगा, तो मैं स्वयं को कभी भी क्षमा नहीं कर पाऊँगा।

अन्तत: वह स्वयं पद्मगुप्त कालिदास को खोजने निकल पड़े। भोज ने साधु का वेश बनाया और भिक्षाटन के बहाने अपने मित्र को ढूँढने घर-घर घूमने लगे।

संध्या होने आयी तब नगर के बाहर एक मंदिर में भोज ने मुकाम लगाया। वहाँ एक त्रिपुंडधारी ब्राह्मण भी बैठा था। भोज ने उसे देखा तो उसे पद्मगुप्त कालिदास की याद हो आयी। वह ब्राह्मण बिल्कुल पद्मगुप्त जैसा ही लग रहा था। वहाँ मुकामी हो जाने के बाद उस ब्राह्मण ने पूछा-

'कठे वास, गुरु कूण हे, कूण पिता कुण मात
किण कारण आणो वियो, किण नगरी हो जात??
धारा नगरी का कवो, कई हे हाल हवाल
भोज राजा जीसो दिखे, उणियारो अर भाल।।

'अरे! साधु आप कहाँ से आये हैं। आपका निवास और गुरु कौन है? माता-पिता कौन हैं? इस ओर नगर में आना किस कारण हुआ? अब आप कहाँ जायेंगे? धारा नगरी के क्या हालचाल है? आप तो राज भोज जैसे दिखते हैं। वैसा चेहरा मोहरा और वैसा ही उन्नत भाल है।

साधु वेशधारी भोज ने सोचा इसने भी मुझे पहचान लिया है। अभी मतिभ्रम तो इसे भी है और मुझे भी भोज ने उसके प्रश्नों के उत्तर में कहा

माता तो धरती कहूँ, गुरु-पितु हे आकास।
तीन लोक वासो करां, भोज मिलन की आस।।
धारा सूनी वै गई, मरिगयो राजा भोज।
मालव पति अवसानियो, गयो धरम को खोज।।

माता तो धरती है, पिता आकाश है। तीनों लोक मेरा निवास है। भोज से मिलने के अभिलाषा है। सुना है राजा भोज मर गया है, धारा नगरी सूनी हो गयी है। मालवपति के अवसान से धर्म नष्ट हो गया है।

साधु वेशधारी भोज से ऐसा अशुभ समाचार सुनते ही पद्मगुप्त व्याकुल हो उठा। उसके मुँह से निकल पड़ा-

जो या सांची वात है, मरि ग्यो राजा भोज।
धारा विधवा बै गई, बुझि ग्यो हगरो ओज।।
पंडित होया बेगता, गयो काव्य को खोज।
सरसत होई बेसती, झर-झर आवे रोज।।'

अरे साधु! यदि यह सच है कि राजा भोज मर गया है तो मानो यह धारा नगरी विधवा हो गयी है। ज्ञान रूपी प्रकाश बुझ गया है। समस्त पंडित दुर्गति को प्राप्त हो गये हैं और काव्य परम्परा का नाश हो गया है। माता सरस्वती निपूती हो गयी है तथा वह जारोजार रो रही है।

ऐसा कहते-कहते पद्मगुप्त भाव विह्वल हो उठा। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। शब्दशक्ति समाप्त हो गई। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और वह बेसुध होकर वहीं गिर पड़ा।

राजा भोज ने उसकी परख कर ली। वह ब्राह्मण ही पद्मगुप्त कालिदास है। कमंडल केजल से उसके मुँह पर छींटे लगाये। पछेवड़े से हवा की। थोड़ी देर में उसे चेत आ गया। उसने आँखें खोली दोनों मित्रों की आँखें मिली। भोज ने मुस्कराकर कहा कालिदास उठो। मुझे पहचानो। पद्मगुप्त के मुँह से अनायास निकल

पड़ा 'महाराजा!' भोज ने कहा 'हाँ!' पद्मगुप्त उठ बैठा। वह पूर्ण चेतमान हुआ। दोंनो मित्र गले मिले। न उसमें महाकवि का दंभ था न इसमें राजा का बोध!

पद्मगुप्त ने कहा मैंने जो पद पहला कहा था वह भ्रम था। अशुभ था। सुखद् व शुभ पद तो यह है -

सधवा तो धारापुरी, पंडित-मंडित जाण।
फेर कंठ ती आ मलो, होई खरी पिछाण।।
सरसत तो हरसे सदा, वाणी होय न हाण।
जुग-जुग जीवो भोज थें ऊँचो उड़े निसाण।।

हे राजा भोज! धारापुरी सदा सुहागिन है। पंडित सभी महिमा मंडित हैं। अब खरी पहचान हो गयी है। एक बार फिर से कंठ से आकर मिल जाओ। सरस्वती सदा हार्षित रहेगी। काव्य की कभी हानि नहीं होगी। हे भोज आप युग-युगांतर तक जीवित रहें और आपकी यशपताका सदा उन्नत रहे।

दोनों मित्र छद्मवेश त्याग कर प्रसन्नचित्त नगर की ओर चल दिये।

यह भावुक प्रसंग सुनाते-सुनाते ठा. दलेलसिंह का तो सचमुच कंठ भर आया था। वे भावुक भी बहुत थे। मैं! मैं क्या कम भावुक था? जैसा गुरु वैसा चेला।

किंवदंतियाँ हमारे सामने, ज्ञान, विज्ञान और राग-वैराग्य का जैसा अद्भुत और मनभावन रूप प्रस्तुत करती हैं। रीति-नीति, प्रीति-बैर और मानव मूल्यों का जैसा मार्ग प्रशस्त करती है, वैसा और कोई विधा नहीं करती। लोक साहित्य की ये लघुकथाएँ मानव जीवन को एक महत्वपूर्ण संदेश देकर आगे बढ़ जाती है। ये दंतकथाएँ हमारी सभ्यता और संस्कृति की प्रवक्ता होती हैं। इन्हें देश, काल, भूगोल और इतिहास की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। ये आँखन देखी कहकर, इठलाकर, अपनी कमर पर हाथ रखे इस प्रकार मुस्कराती खड़ी दिखती हैं मानो कह रही हों हमारी बात झुठलाओ तो जाने।।

लेखकों से निवेदन

महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ का नवीन प्रकल्प **'विक्रम संवाद'** पाक्षिक आलेख सेवा है. विभिन्न प्रकाशन-प्रसारण माध्यमों को नि:शुल्क प्रेषित किया जाता है. इस आलेख सेवा का उद्देश्य प्रमाणिक एवं अज्ञात तथ्यों से पाठकों का परिचय कराना है. आपके पास ऐसी कोई सामग्री हो तो कृपया हमें भेजें.

-संपादक

विक्रम गाथा यूट्यूब चैनल के बाद अब 'विक्रम बानी' पर

सार्वभौम सम्राट विक्रमादित्य को लेकर अनेक कथा-गाथाएँ हैं लेकिन बहुत कम लोगों को इस बात की जानकारी है कि विक्रमादित्य का पूरी दुनिया में हस्तक्षेप रहा है. सत्ता-शासन में उनसा शासक दुनिया में दूसरा कोई नहीं हुआ जिनका ज्ञान और धर्म के प्रति उनका अनुराग अद्भुत है. विक्रमादित्यकालीन अनेक संदर्भ और प्रसंगों को पिरोकर महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ ने फिल्म निर्माण का आरंभ किया है. यह फिल्में उन भ्रांतियों को दूर करती हैं जो अनकही कथाएँ हैं तो जानकारी के नये द्वार भी खोलती हैं जो आज समाज की जरूरत है. भारतीय ज्ञान परम्परा का गौरवशाली इतिहास और धर्म-संस्कृति के अनेक अनछुये पहलुओं पर छोटी-छोटी फिल्मों का निर्माण कर महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ के यूट्यूब चैनल 'भारत विक्रम' पर प्रसारित किया जा रहा है.

फिल्म निर्माण के बारे में महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी कहते हैं कि अनेक विषय हैं जिन पर फिल्म निर्माण की आवश्यकता हमने महसूस की. यह इसलिये भी जरूरी है कि जिस तरह शकों ने भारतीय संस्कृति को क्षति पहुँचायी, वैसे ही आधी-अधूरी और गलत जानकारी के साथ सम्राट विक्रमादित्य को प्रस्तुत किया जा रहा है. इन गलतफहमियों को दूर कर हम सही संदर्भ और तर्क के साथ अपनी बात रख रहे हैं.

शोधपीठ के निदेशक श्री तिवारी कहते हैं कि इस क्रम में हम 'विक्रम बानी' के नाम से रेडियो प्रसारण आरंभ करने जा रहे हैं. कोशिश होगी कि 'विक्रम बानी' को रूचिकर श्रोता अपनी सुविधा से यात्रा के दौरान भी सुन सकें. महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ ने दस्तावेजीकरण की दृष्टि से करीब करीब 30 किताबों का प्रकाशन पूर्ण कर चुका है और अनेक किताबें प्रकाशनाधीन है. निदेशक श्री तिवारी का कहना है कि विक्रमकालीन इतिहास को जानने वाले सुधि लेखक उम्रदराज हैं और हम उनकी सहायता से यह कार्य पूर्ण कर पा रहे हैं. भारतीय संस्कृति, भारतीय ज्ञान परम्परा और नवाचार के इस प्रयास में महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ लगातार प्रयासरत है.

पुस्तक चर्चा/

संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य

भारतीय संस्कृति पर अभिमान करने वालों के लिए यह निश्चय ही गौरव करने योग्य है कि आज भारत वर्ष में प्रवर्तित विक्रम संवत्सर बुद्ध निर्वाणकाल गणना को छोड़कर संसार के प्राय: सभी ऐतिहासिक संवतों में प्राचीन है। लेखक डॉ. राजपुरोहित ने अपनी नवीन कृति में विक्रम संवत् के बारे में विस्तार से उल्लेख करते हुए कई शंकाओं का निवारण किया है।

शकानां वंशमुच्छेद कालेन कियताति हि।
राजा विक्रमादित्य: सार्वभौमोपमोऽभवत् ।।
मेदिनीमनृणां कृत्वा ऽचीकरद् वत्सरं निजम।
ततो वर्षशते पंच त्रिशता शधिके पुन: ।
तस्या राज्ञोऽन्वयं हत्वा वत्सर: स्थापित: शकै:।।

एक दूसरा मत यह भी है कि शक सम्वत् कनिष्क ने चलाया था और उसके समकालीन शक क्षत्रपों और सातवाहनों के राज्यों में इसका काफी प्रयोग होने की वजह से इसका नामकरण शक सम्वत् हो गया। शक चाहे शक शासकों ने प्रारंभ किया या चाहे कुषाण वंश के शासक कनिष्क ने, लेकिन ये शक और कुषाण दोनों ही भारत आक्रांता थे। विदेशियों द्वारा शुरू किये गये सम्वत् को भारत में स्वीकार किया जाना औचित्यपूर्ण नहीं है। वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर सटीक राष्ट्रीय कैलेंडर अंगीकार करने के लिए गठित समिति की वर्ष 1955 में प्रकाशित रिपोर्ट की भूमिका में पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखा कि –'विभिन्न कैलेंडर देश में पिछले राजनीतिक विभाजन का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तब यह वांछनीय है कि कैलेंडर में हमारी नागरिक, सामाजिक और अन्य आवश्यकताओं की एकरूपता हो और इस समस्या का निदान वैज्ञानिक आधार पर हो। लेकिन राजनीतिक विभाजन, वैज्ञानिकता, राष्ट्रीयता तथा नागरिक, सामाजिक आवश्यकताओं को अलक्षित करते हुए विभाजन तथा देश की पराजय के प्रतीक सम्वत्सरों को आधिकारिता प्रदान की गयी।

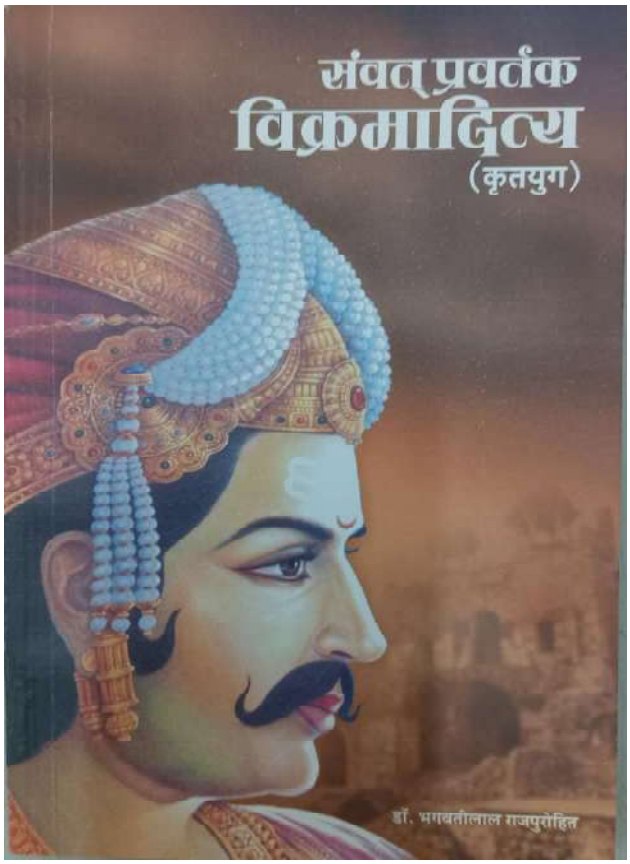

पुस्तक– संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य
लेखक –डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
सम्पादक– श्रीराम तिवारी
प्रकाशक– महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल
मूल्य– 200/– (दो सौ रुपये मात्र)

'विक्रम संवत् का प्रवर्तन विक्रमादित्य द्वारा उज्जैन में किया गया. उज्जैन परम्परा से ही काल गणना का एक प्रमुख केन्द्र माना जाता रहा है और इसलिए अरब देशों में भी उज्जैन को अजिन कहा जाता रहा. सभी ज्योतिष ग्रंथों में उज्जैन मानक माना गया है. आज जो वैश्विक समय के लिए ग्रीनविच की स्थिति है, वह ज्योतिष सिद्धांत काल में उसके बाद सैकड़ों वर्षों तक उज्जैन की रही है.'

–इसी पुस्तक से

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.
आलेख सेवा नि:शुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com